International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, RJIF (Impact Factor) 5.22
www.hindijournal.com
Volume 2; Issue 1; January 2016; Page No. 13-14

विचारधारा बनाम जातिवाद और हिंदी साहित्य

आनंद कुमार मिश्रा

पीएच. डी. (जे. आर. एफ) [हिंदी साहित्य], हिंदी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र)

iLrkouk

वर्तमान समाज में विभिन्न प्रकार की विचारधाराएँ मौजूद हैं | विचारधारा के स्तर पर तो प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को सबसे श्रेष्ठ दिखाना चाहता है, एकदम आदर्शवादी साफ़ - सुथरा छबि वाला | यह प्रवृति अधिकतर नेताओं में मिलती है, ये वे नेता हैं जो जाति का कई वर्गों में बटवारा किये हुए हैं | आजादी के समय जब कांग्रेस ने सत्ता संभाला तब केवल एक ही एजेंडा था- भारत की गरीबी दूर करना और 'सर्वजन हिताय', लेकिन जैसे - जैसे वक्त आगे बढ़ता गया यहाँ का एजेंडा भी बदलता गया क्योंकि न तो भारत की गरीबी दूर हुई और न ही सरकार 'सर्वजन हिताय' को सार्थक कर पायी | यहाँ शोषित और वंचित वर्ग तब भी समाज की मुख्य धारा में नहीं था और न ही आज भी पूरी तरह से शामिल हो पाया है | ये बात और है कि कुछ सुधार हुए हैं |

जातिवाद का कीड़ा इस कदर लोगों के दिमाग में घर कर गया है कि लोग इस संकीर्णता से उबर ही नहीं पा रहे हैं | जो लोग समूहों, सेमिनारों आदि में आदर्शवाद की बातें करते है और स्वयं को धर्मनिरपेक्ष, सभी जातियों का सम्मान करने वाला बताते है और यह घोषणा करते है कि जातिवाद ख़त्म होना चाहिए, वे लोग भी इस भयंकर बीमारी से ग्रषित हैं जब बात अपने घर, अपने परिवार की आती हैजब उन्ही का बेटा या बेटी किसी अन्य जाति की लड़की या लड़का से शादी की बात करता है तब वे ही लोग घोर जातिवादी नजर आते है | आज समाज कि सबसे बड़ी समस्या यही है कि लोग ये तो चाहते है कि समाज में बदलाव हो किन्तु बदलाव कि शुरुआत कोई और करे, लोग यह भी चाहते हैकि देश में क्रांति हो और भगत सिंह जैसा कोई क्रांतिकारी जन्म ले किन्तु मेरे घर में नहीं बल्कि किसी और के | यह भावना जब तक लोगो के अंदर रहेगी वे कभी भी संकीर्णता की जाल से बाहर नहीं निकल सकेंगे | आज जातिवाद ने इतना भीषण रूप ले लिया है जिसका समय रहते अगर उपचार न किया गया तो हमें उसी तरह इधर से उधर भटकना पड़ेगा, जिस तरह से एक पक्षी समुद्र के बीच में फंसकर उसका किनारा ढूंढता है और इधर से उधर चक्कर लगाता रहता है |

आज बौद्धिक वर्ग का दमन किया जा रहा है और अशिक्षित व भोली - भाली जनता को जाति का हवाला देकर भरमाया जा रहा है | जनता यह नही समझ पाती कि तथाकथित राजनीतिक व्यक्तियों द्वारा उन्हें जागरूक नही किया जा रहा है बल्कि जाति रुपी दलदल में धकेलकर अपनी सत्ता को बनायें रखने का घोर षड़यंत्र रचा जा रहा है | सत्ता यहाँ कई संगठनो में विभाजित है, जो जाति आधारित राजनीति करते हैं- कोई एक विशेष जाति को लेकर राजनीति करता है, कोई दलितों को लेकर चलता तो कोई दलितों के साथ सवर्णो को मिलाकर राजनीति करता है तो कोई 'जय भीम - जय मीम' का नारा देकर दलित - मुस्लिम गठजोड़ का षड़यंत्र रचता है | इस प्रकार जातिवाद का खेल खेला जा रहा है | जिस पर विचार करना आज की पीढ़ी के लिए जरुरी है-

"जातिवाद का यहाँ यह खेल
कब तक चलता रहेगा भाई
मै भी हूँ तुम्हारी तरह ही
एक रंग का, एक आकार का
बनावट भी एक ही तरह का
तो क्यों हमें कर दिया गया
अलग - अलग वर्ग में ||"

जातिवादी रुपी दीमक से आज का साहित्य भी अछूता नहीं है, जो साहित्यिक श्रेष्ठता, वैचारिकी और मुल्यनिरपेक्षता को ख़त्म करता जा रहा है | किसी भी विमर्श की शुरुआत साहित्य में, साहित्य के भीतर से हुई थी | पर आज इसका स्वरुप ही बदलता जा रहा है | आज इसे हिंदी साहित्य से काटकर एक अलग साहित्य के रूप में मढने व गढ़ने का प्रयत्न जारी है | जातिवाद रुपी इस बीमारी का ही यह परिणाम है कि आज कबीर को अलग दृष्टि से पढ़ा जाता है और तुलसीदास, निराला व प्रेमचंद को अलग | कबीर को जहाँ दलितों का हिमायती बताया जा रहा वहीँ तुलसीदास को सवर्णवादी व दलित विरोधी | नंदकिशोर नवल जी अपनी पुस्तक 'तुलसीदास' में यह चिंता व्यक्त करते हैं कि- "दुर्भाग्यवश हिंदी लेखको ही नही, पाठको की नयी पीढ़ी भी तुलसीदास के प्रति घोर उपेक्षा का भाव रखती है और ये दोनों ही कबीर पर फ़िदा है, मानो एक युग में एक ही श्रेष्ठ कवि हो सकते हैं, उससे अधिक नही | तुलसीदास के प्रति उपेक्षाभाव का कारण उनका वर्णाश्रम धर्म का समर्थक होना है | यह किसी भी कवि को उसके विचारो की कसौटी पर रखकर परखना है | कहने का तात्पर्य है कि किसी भी कवि को किसी 'जाति' विशेष का न मानकर बल्कि उसके कवित्त का आस्वाद 'उसके समय तथा वर्तमान सामाजिक सन्दर्भ से जोड़कर' लेने की आवश्यकता है |

साहित्य के केंद्र से 'होरी' को बेदखल कर 'शेखर' को आधुनिक हिंदी कथा - साहित्य का सबसे सशक्त प्रतिनिधि करार देना साहित्यिक दृष्टि से अस्वीकार्य है | दलित बुद्धिजीवी प्रेमचंद, निराला से लेकर आधुनिक हिंदी साहित्य की जनोन्मुख परंपरा को नकारता हुआ वह हिंदी साहित्य की संपूर्ण विरासत को ब्राह्मणवाद एवं मनुवाद की भेंट चढ़ा देता है | 'कफ़न' कहानी को सामंती - मूल्यों एवं वर्ण - व्यवस्था का पक्षधर घोषित करता है तो निराला को ब्राह्मणवाद का पोषक | जबकि 1 9 43 में प्रकाशित अपने लेख 'क्या हम वास्तव में राष्ट्रवादी हैं ?' में प्रेमचंद ने यह उदघोषणा की थी कि- "राष्ट्रीयता की पहली शर्त वर्ण - व्यवस्था, ऊँच - नीच के भेद और धार्मिक पाखंड की जड़ खोदना है | "उन्होंने अपने इस भाव को साहित्य में भी अभिव्यक्ति दी | सदगति, ठाकुर का कुआँ, कफ़न, बाबा जी का भोग, सवा सेर गेहूं सरीखी वर्णाश्रम एवं सामन्तविरोधी कहानियां एवं गोदान का सिलिया -

मातादीन प्रसंग इसका ज्वलंत प्रमाण है | इसी तरह निराला जी ने भी शोषण का विरोध करते हुए दलित पीड़ा को अभिव्यक्ति दी-

> 'आज अमीरो की हवेली / किसानो की होगी पाठशाला / धोबी, पासी, चमार, तेली, खोलेंगे अँधेरे का ताला / एक पाठ पढ़ेंगे / टाट बिछाओ |'

अतः जिस साहित्य में प्रेमचंद, निराला, धूमिल जैसे साहित्य रत्न दलितों, पीड़ितों के प्रवक्ता एवं पक्षधर रहें हो, वहां दलित साहित्य की पक्षधरता के नाम पर साहित्येतर प्रेरणा की कोई अनिवार्यता नहीं है | साहित्य एवं संस्कृति के क्षेत्र में 'दलितों का, दलितों के लिए, दलितों द्वारा' का नारा एक संकीर्ण मानसिकता का परिचायक है | यह जरुरी नहीं है कि दलित साहित्य सिर्फ वही लिख सकता है या समझ सकता है जो सिर्फ दलित हो | माना कि भोगा हुआ अनुभव / यथार्थ अधिक सघन हो सकता है किन्तु ऐसा भी नहीं कि देखा व अनुभूति जनित संवेदना का कोई महत्व न हो | आज जरुरत है साहित्य एवं संस्कृति की दुनियां को वर्ण - भेद या जाति - भेद से ऊपर उठाकर सामाजिक मूल्यों की स्थापना एवं बेहतर समाज के निर्माण के लिए सृजित किया जाये | जातिभेद, असहिष्णुनता जैसी भावना न हो सिर्फ साहित्यिक मूल्य और बेहतर समाज का निर्माण हो |